- India Today State of States Bihar: The Winners. (2018, November 3). *India Today*. Retrieved from https://www.indiatoday.in/state-of-states-bihar/story/india-today-state-of-the-states-bihar-the-winners-1381924-2018-11-03 on 22-11-2019
- Jha, A.K. (2018, November 11). *A silent breakthrough*. Retrieved from India Today https://www.indiatoday.in/magazine/state-of-states-bihar/story/20181119-a-silent-breakthrough-1384199-2018-11-11 on 22-11-2019
- Kumari, R. (2014). Levels of living, poverty and inequality in Bihar: a district-wise analysis. *Journal of Social and Economic Development*, *16*(2), 316-322.
- Raj, P., & Raj, A. (2004). Caste variations in reproductive health status of women: a study of three eastern states. *Sociological Bulletin*, *53*(3), 326-347.
- Ward, H., Mertens, T. E., & Thomas, C. (1997). Health seeking behaviour and the control of sexually transmitted disease. *Health Policy and Planning*, *12*(1), 19-28.

*****

अग्निपुराण में ब्रह्मतत्त्व एवं गीतासार

डॉ0 प्रतिभा*

वेदविदित दर्शन का परम लक्ष्य आत्मदर्शन है। अपने आपको जान लेना ही सत्य को जान लेना है। इस बोध के साथ ही साथ दुःख आत्म अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कोई व्यक्ति अपने आपको जानते ही आनन्द का अधिकारी बन जाता है। वह जो प्रत्येक के भीतर है, सच्चिदानन्द है। उस ब्रह्म की अनुभूति ही आनन्द है। इसी ब्रह्म को जानना इसका लक्ष्य हैं क्योंकि ब्रह्म को जानना ही सत्य को जानना है। सत्य को जानना आत्मानन्द को पा लेना है। इस सत्य को पाया जाता है। अन्तस् आनन्द और समग्र सत्ता के प्रति प्रेम तो इस उपलब्धि का प्रतिफल है। इसे पाना ही भारतीय दर्शन का एकमाष लक्ष्य है। अग्निपुराण में इन्हीं लक्ष्यों को हम प्रतिफलित होते हुए देखते हैं।

अग्निपुराण में आत्मा को भी वेद और उपनिषदों की तरह परमतत्व, ब्रह्म या सत्य का स्वरूप माना गया है।[1] इसे अजर और अमूर्त माना गया है। यह जीव और जड़ जगत् से बिल्कुल भिन्न है। मन, बुद्धि और अहंकार से परे है। यह सर्वथा असांसारिक, सर्वव्यापक, ज्योतिर्मय, नित्य–शाश्वत एवं सत्य है। आत्मा कर्मबन्धन से मुक्त है। चिद्रूप होने के कारण यह ब्रह्म से अभिन्न है। आत्मा और ब्रह्म दोनों एक ही हैं। उपनिषद् की भाषा में परम तत्त्व ही अन्तिम तत्त्व है, सर्वाधार है, संसार की सारी वस्तुओं का मूलाधार है। केवल यही तत्त्व जिसे ब्रह्म कहा जाता है, संसार का मूल कारण है। इसी से सारे संसार की उत्पत्ति है, यही विश्वसत्ता का नियामक आधार है। इसी में अन्ततः सब लय हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संसार की उत्पत्ति, स्थिति और विनष्टि का यही एकमाष कारण है–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्तभिसंविशन्ति।[2]

उपनिषदों में जिस ब्रह्मविद्या का सविस्तार वर्णन किया गया है, उसका सरल और संक्षेप भाषा में श्रीमद्भगवद्गीता स्वरूप निर्दिष्ट करती है। इसीलिए गीता को ब्रह्मविद्या कहा जाता है। उपनिषदों में भक्ति, ज्ञान और कर्म को अर्थात् इन तीनों को ब्रह्मविद्या का साधन माना गया है। ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए मुख्यतः ये तीनों मार्ग समान रूप से महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। भगवान ने स्वयं कहा है–

***संस्कृत–विभाग–कला–संकाय, पटना विश्वविद्यालय, पटना–05**

मार्गास्षयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।
ज्ञानं कर्मञ्च भक्तिञ्च नेपायोन्योऽसि कर्हिचित्।।

गीता इन तीनों योगों का समन्वय है। मन, बुद्धि और तन को निरन्तर प्रभु की सेवा में लीन कर देना ही भक्तियोग है। अनासक्त भाव से अपने प्रत्येक कर्त्तव्य कर्म को परमात्मा का आदेश मानकर करते जाना ही कर्मयोग है। समता की दृष्टि से सर्वष अपने आराध्य की ध्वनि–दर्शन ज्ञानयोग कहलाता है।

अग्निपुराण[3] में लौकिक जीवन को आनन्दमय बनाने के साधनभूत विभिन्न यज्ञों का विधान है। विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा और प्रार्थना से मनुष्य कैसे आनन्द प्राप्त कर सकता है। इसका उपाय बतलाया गया है। किन्तु इसे आत्मानन्द से कोई मतलब नहीं है। 'मुण्डकोपनिषद[4]' के अनुसार जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी अपने तप के प्रभाव से या ज्ञानी व्यक्ति सूर्यद्वार से आत्मानन्द तक पहुँच सकते हैं। 'छान्दोग्य उपनिषद[5]' के अनुसार मानव जीवन का परम तत्त्व या चरम लक्ष्य आत्मानन्द का अन्वेषण ही माना गया है।

अग्निपुराण[6] में यष–तष 'उपनिषद्' शब्द का सम्बन्ध 'ब्रह्मज्ञान' से किया गया है। इसी ब्रह्मज्ञान से मनुष्य को भवबन्धन से भक्ति मिलती है। इस मुक्ति का ज्ञान ही 'ब्रह्मज्ञान' है। इसी को गूढ़विद्या या रहस्यविद्या भी कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मविद्या का ज्ञान ही उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। आत्मज शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में वायु के अर्थ में किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में आत्मन् शब्द जीवात्मा के अर्थ में प्रयुक्त है। उपनिषदों में ये आत्मन् और ब्रह्मन् शब्द एक–दूसरे के पूरक और पर्यायवाची बन गये है। इस तरह आत्मा और ब्रह्म, जीव और जगत्, ब्रह्म और माया प्रभृति का विवेचन और प्रतिपादन इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। इसी के अन्तर्गत आचार और व्यवहार, कर्त्तव्य–मार्ग, जैविक–आदर्श, पुनर्जन्म सिद्धान्त परा और अपरा विद्या का भी समावेश किया गया है।

वास्तव में तत्त्व की पूर्ण शुद्धावस्था का नाम ही आत्मतत्त्व है और भी उचित रूप से कहे तो इसे ही तत्व ही कहना अधिक अच्छा है क्योंकि वहाँ न कोई आत्मा है और न कोई अनात्म। 'ऋग्वेद[7]' में इसे वायुरूपी प्राण कहा गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह शब्द जीवात्मा का वाचक बन गया है। उपनिषदों के चिन्तन के आधार पर यह आत्मा शरीरान्तर के बाद भी सुरक्षित रहती है। आत्मा एक नित्य पदार्थ है। यमराज और नचिकेता संवाद में आत्मा का यथोचित विवेचन यमराज ने स्वयं किया है। आत्मा कभी मरती नहीं अवस्थाजन्य दोष से मुक्त रहती है, इन्द्रियजन्य दोष से अप्रभविष्णु रहती है। संकल्प–विकल्पात्मक मन से, विवेचनात्म' बुद्धि से भी परे है यह आत्मा। एक रमणीक रूपक के द्वारा यमराज ने इसका एक मोहक चिष खींचा है–

आत्मानं रथिनं विद्वि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विधि मनः प्रग्रहमेव च।।[8]
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयान्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।

अर्थात् देह रथ है। बुद्धि सारथी है। मन लगाम है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। विषय–वासना रूपी राह दौड़ते रथ पर आत्मा रथी बनकर बैठी है। इस आत्मा के अस्तित्व का अर्थ सत् का वास्तविक या सम्भावित अनुभूति ही है। यदि आत्मबोध का विश्वसनीय भाव अनुभव ही है। तो हमें अपनी आत्मभावना को तब तक ज्ञान रहित ही मानना चाहिए, जब तक कि वह आत्मानुभूति तक न पहुँच जाये।

आत्मा का स्वरूप निर्धारित करते हुए कठोपनिषद् का कथन है कि यह आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती ही है। इससे न तो किसी ने जन्म लिया है और न यह किसी से उत्पन्न हुआ है और यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत और सनातन है। देह मरता है, पर आत्मा कभी नहीं मरती है। कहा गया है–

न जायते म्रियते च विपश्चिन्नांय कतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[9]

यह आत्मा एक रहस्यमय पदार्थ है। अग्निपुराण[10] तथा उपनिषद् दोनों आत्मा और परमात्मा या ब्रह्म की एकता की पुष्टि करती है।

अग्निपुराण के अनुसार ब्रह्म सत, चित् और आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द' है। वही सबकी आत्मा है और उसी से इस नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। ब्रह्म सबमें व्याप्त होने के कारण सर्वभूता कहलाता है। ब्रह्म ही विश्व का अव्याकृत रूप है। वही सभी वस्तुओं का परम कारण है। संसार की सभी वस्तुओं का और शक्तियों का अधिष्ठानस्वरूप है। इसी ब्रह्म ने सृष्टि की उत्पत्ति के समय समस्त सृष्टि पदार्थों में प्रवेश किया है। फिर उसने सत् असत्, निरूक्त–अनिरूक्त, ज्ञान–विज्ञान, ऋत–अनृत दोनों रूप धारण किया है। सम्पूर्ण प्रकृति ब्रह्म की ही सृष्टि है, ब्रह्मजन्य है, ब्रह्मप्रोरत है। ब्रह्म ही दस सृष्टि का सूषधार है।

अग्निपुराण[11] में ब्रह्म के दो स्वरूपों का वर्णन मिलता है– स विशेष अर्थात् सगुण रूप एवं निर्विशेष अर्थात् निर्गुण रूप। निर्गुण ब्रह्म को परब्रह्म कहा गया है। अग्निपुराण में सगुण ब्रह्म को अपर ब्रह्म कहा गया है। सगुण बग्रह्म निर्विशेष नहीं सविशेष है। अप्रमेय नहीं, प्रमेय है।

अग्निपुराण[12] में कहा गया है कि निर्गुण ब्रह्म न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न ह्रस्व है, न दीर्घ है, न रक्त है, न द्रव है, न छाया है, न रस है, न प्राण है और न मुख। 'कठोपनिषद्' के अनुसार निर्गुण ब्रह्म अलक्ष्य, अग्राह्य अश्रोष, अर्वण अचक्षुष्क,

बिना हाथ पैर का है। श्रुतियों में 'नेति–नेति' कहकर इसका परिचय दिया गया है। इन कथनों से प्रमाणित होता है कि ब्रह्म अलक्षण और निर्वाच्य है।

अग्निपुराण[13] के अध्ययन से यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ब्रह्म की अनुभूति एक आध्यात्मिक है। इस अनुभूति में एक आन्तरिक परिवर्तन है, जो शान्ति, आनन्द, जीवन्त, सतर्कता, प्रेम–वेदना इत्यादि अन्तःकरणों के फलों में, उपलब्धियों में अपने को व्यक्त करता है।

आचारनिष्ठ जीवन और नैतिक आदर्श से अनुप्राणित भक्तिमार्ग से ही उस परमपिता परमेश्वर से साक्षात्कार के अवसर उपलब्ध होते हैं। वही परमपिता परमेश्वर की अनुभूति आत्मानन्द है। उस ब्रह्म को, उस आत्मा को जानना ईश्वर को पा लेना है। इसे ही पाने के लिए भक्ति–मार्ग, कर्म–मार्ग एवं ज्ञान–मार्ग की अवधारणा श्रीमद्भगवद्गीता सहित सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में की गई हैं।

कर्म मार्ग पुनर्जन्म सिद्धान्त में प्रतिफलित हुआ दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों की विचारधारा में कर्म की प्रतिष्ठा है। 'बृहदारण्यकोपनिषद्'[14] में असंदिग्ध रूप से कर्म–मार्ग की प्रतिष्ठा स्थापित की गई है। तद्नुसार पुरुष काममय है, पुरुष की कामना के अनुसार उसका संकल्प होता है तथा संकल्पानुसार ही कर्म करता है। उपनिषद् की इसी विचारधारा के अनुसार इस प्रसंग में तुलसीदास की यह मार्मिक उक्ति भी दर्शनीय है–

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करई सो तस फल चाखा।।

इस कर्म–सिद्धान्त के अनुसार जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, तद्नुसार फल–प्राप्ति हेतु उसे उस योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। व्यक्ति को शुभ कर्मों के लिए सुख और अशुभ कर्मों के लिए, दुःख भोगने के लिए विविध जन्म ग्रहण करना पड़ता है। कभी–कभी संचित कर्म का फल कालान्तर में मिलता है। कर्म–निष्पादन में आत्म–स्वातन्षय का उपपादन ही उपनिषद् की समस्त शिक्षाओं का सार हैं।[15] गीता में निष्काम कर्म की महत्ता बतलायी गयी है। अपने ही शुभ कर्मों से मनुष्य स्वर्ग पाता है और अपने ही अशुभ कर्मों से अधोगामी बन जाता है। इसी कर्म सिद्धान्त के आधार पर पुनर्जन्म–सिद्धान्त का विकास माना जाता है।

जीवन मरण की निरन्तर गतिशीलता में उपनिषदों की तरह श्रीमद्भगवद्गीता की भी गहरी आस्था है। एक बार अतिभाग नामक एक जिज्ञासु ऋषि ने मुनि याज्ञवल्क्य से पूछा था– 'हे मुनिवर! मृत्यु के पश्चात् जब प्राणियों के प्राण वायु में, नेष सूर्य में, मन चन्द्रमा में, श्रोष दिशाओं में, शरीर पृथ्वी में, आत्मा आकाश में, बाल वनस्पतियों में, रक्त और वीर्य जल में चले जाते हैं तो फिर व्यक्ति का शेष क्या रह जाता है? तब मुनि याज्ञवल्क्य ने उसे समझाते हुए एकान्त में ले जाकर

कहा–'ऐसी समस्याओं का समाधान कदापि नहीं हो सकता। हम तो अच्छे और बुरे कर्मों का भेद भर ही कर सकते हैं। सत्कर्म से मनुष्य पुण्यात्मा और कुकर्म से वही परमात्मा बन जाता है। उपनिषदों की मान्यता है कि स्वर्णकार स्वर्णपाष पर जैसे मूर्ति की रचना करता है और उसके पुराने हो जाने पर उसी सोने को गलाकर दूसरी मूर्ति का निर्माण करता है, उसी तरह इस देह के जीर्ण हो जाने पर आत्मा इसे छोड़कर नई देह धारण कर लेती है। पुनर्जन्म का आधार यही है।

गीता[16] के अनुसार मरणोपरान्त प्राणी का सम्बन्ध शरीर और संसार से समाप्त हो जाता है। अपने कृत–कर्म के अनुसार उन्हें इहलोक तथा परलोक में परिणाम भोगना पड़ता हैं। तद्नुसार उन्हें तीन गतियाँ मिलती हैं– देवयान गति, पितृयान गति और तृतीया गति। जो व्यक्ति अपने जीवनकाल में अध्यात्म विद्या का अभ्यास करते हैं, मरणोपरान्त सर्वप्रथम वे अग्नि में प्रवेश करते हैं। पुनः अग्नि से दिन में, दिन से शुक्ल पक्ष, शुक्लपक्ष से उत्तरायण, उत्तरायण से षड् मासों में, षण्मासों से संवत्सर में, संवत्सर से सूर्य में, सूर्य से चन्द्रमा में और चन्द्रमा से बिजली में प्रवेश कर जाते हैं। विद्युल्लोक में उनकी एक पारलौकिक पुरुष से भेंट होती हैं, जो उन्हें ब्रह्मलोक तक पहुँचाता है और वहाँ वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। वहाँ जब ब्रह्म का पुनः प्रादुर्भाव होता है तब जीव क्रमशः पुनः मर्त्यलोक में पहुँच जाता है। जीवों की मुक्ति से पूर्व यह आवागमन की प्रक्रिया चलती रहती है।

पितृयान की गति में यज्ञ करने वाले एवं शुभकर्मी व्यक्ति जो पूजा–पाठ और प्रार्थना करते हैं, देहपात के पश्चात् चिता की अग्नि में प्रवेश करते हैं और इससे पूर्व वे धूमसमूह में प्रवेश करते हैं। फिर धूम से रात में, रात से कृष्णपक्ष में, कृष्णपक्ष से दक्षिणायन में षड्मासों में और वहाँ से वे सीधे पितृलोक में चले जात हैं। पुनः पितृलोक से आकाश में और आकाश से चन्द्रलोक में तथा यहाँ से वे अन्न हो जाते हैं। इन अन्नों का देवता भक्षण करते हैं। जब तक पुण्य शेष रहता हैं वे उस लोक में वास करते हैं। पुण्य क्षीण होते ही वे पुनः मृत्युलोक में जाते हैं–

''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशन्ति[1]''

तदनन्तर पुनः धरती पर लौटकर अपने पूर्वकृत कर्म के फलानुसार विविध योनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।

उपर्युक्त दोनों मार्गों से भिन्न एक तीसरी शक्ति है तृतीया–गति। यह निम्नकोटि के

जीव जैसे कीट–मकोड़े, सरीसृप, पतंग प्रभृति जीव के लिए हैं जो सदैव जीते मरते हैं। इनके जन्म–मरण का क्रम कभी टूटता नहीं है। जीवों की इन विविध गति की औपनिषेदिक कल्पना जीव के पुनर्जन्म से सम्बन्धित है तथा पूर्णतः कर्म–धर्म पर अवस्थित है। आवागमन का यह चक्र अनवरत चलता रहता है। इनका अन्त मोक्ष से ही संभव है। मनुष्य अध्यात्म विद्या के सोपान से ही मोक्ष के

प्रसाद तक पहुँच जाता है। इसी विद्या से वह दैहिक–दैविक और भौतिक तापषय से मुक्ति पा सकता है। इस अन्तिम अवस्था की प्राप्ति निष्काम भाव से कर्म करने वाले आत्मज्ञानियों के लिए ही हो सकती है। सकाम सत्कर्म करने वाले स्वर्णिम सुख का भोग कर सकते हैं किन्तु निम्न स्तरीय जीवों के लिए जन्म–मरण का अन्त नहीं है। 'केनोपनिषद्' के अनुसार देवयान को उत्तर मार्ग अर्थात् उत्तरायण तथा पितृयान को दक्षिण मार्ग अर्थात् दक्षिणायन कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त ज्ञानमार्ग मोक्ष प्राप्त करने का परम साधन है। आत्मा जब परम पद को प्राप्त करती है। तब वहाँ उसे न तो सुखानुभूति होती है और न दुखानुभूति ही, वहाँ केवल शाश्वत सुख है, अमरता का साम्राज्य है। यहाँ जरा–मरण के बन्धन से आत्मा उन्मुक्त हो जाती है। आत्मा की इस अमृतावस्था को उपनिषदों में मोक्ष कहा गया है। उपनिषदों में ज्ञान को मोक्ष का साधन बतलाया गया है– 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' क्योंकि ज्ञान से अविद्या अर्थात् अज्ञान का नाश होता है। इस अविद्या का विनष्टीकरण ही मोक्ष है। विद्या के द्वारा ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। यह अमृतत्व की प्राप्ति ही तो जन्म और मरणचक्र से मुक्ति है। अतः मोक्ष अपुनर्भव है। ठीक इसके विपरीत पुनर्भव या पुनर्जन्म या पुनर्जन्म है। इसे ही संसार कहा जाता है। इससे भिन्न अमृतत्व अर्थात् मोक्षावस्था है। इस अवस्था की प्राप्ति हो जाने पर पुनः संसार की प्राप्ति नहीं होती– 'न पुनरावर्तते' इस तरह जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है उसके हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती है। उसके समस्त संशय दूर हो जाते हैं। और वह ब्रह्ममय हो जाता है। इस प्रसंग में मुण्डकोपनिषद् का कथन है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् चक्रे परावरे।।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में कहा जा सकता है कि आत्मज्ञान का पहला फल आप्तकाम होता है। आप्तकाम होने के बाद ही मनुष्य को परमानन्द की प्राप्ति होती है और वह सम्पूर्ण संसार में आत्मदर्शन या ब्रह्मदर्शन करता है। ऐसा व्यक्ति सर्वमय हो जाता है जिस प्रकार राहुग्रस्त होने के पश्चात् चन्द्रमा अपनी पूर्ण कला के साथ उदित होता है, उसी प्रकार शारीरिक बन्धन समाप्त होने से आत्मा को शाश्वत जीवन मिल जाता है। इसी की उपलब्धि मानव–जीवन की चरम उपलब्धि है। समग्र जीवन की सार्थकता इसी उपलब्धि में है। यहाँ यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि आँखों की शुरूआत स्वयं को ही देखने से होती है और जो स्वयं को देखता है वह आनन्द की दिशा में चलना प्रारम्भ कर देता है। सुख की दिशा स्वयं से संसार की ओर है और आनन्द की दिशा संसार से स्वयं की ओर है। मोक्ष का यही स्वरूप है, यही मानव का पुरुषार्थ है, इसे ही पाने हेतु

मार्गषय की कल्पना व अवधारणा हुई है। अग्निपुराण और श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्मतत्व विषयक यही सार पूर्णतः समाहित है।

संदर्भ–

1. अग्निपुराणम् 175/15/500
2. तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1
3. अग्निपुराणम् 1/14/2
4. मुण्डकोपनिषद् 1.2.7.11
5. छान्दोग्योपनिषद् 5.14.24
6. अग्निपुराणम् 372.11.752
7. ऋग्वेद 7.87.2
8. कठोपनिषद् 1.3–4
9. कठोपनिषद् 1.2.30
10. अग्निपुराण 380.64.1096
11. अग्निपुराण 378.1–21
12. अग्निपुराण अ0 373.5–11
13. अग्निुपराण अ0 368.372
14. वृहदारण्यकोपनिषद् 3.2.13
15. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय
16. गीता 4.38

******